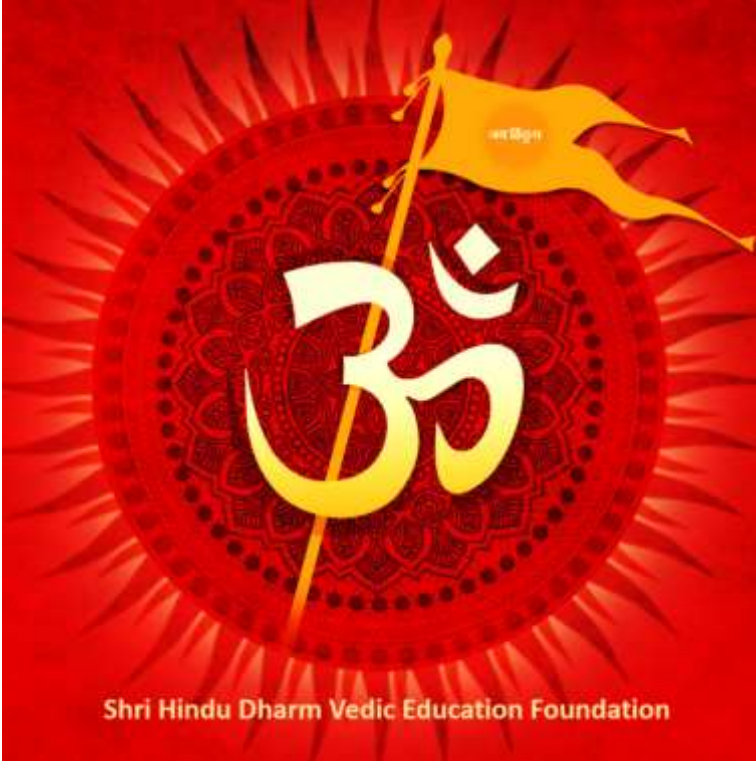




॥ ॐ ॥  
॥ श्री परमात्मने नमः ॥  
॥ श्री गणेशाय नमः ॥

# महावाक्य उपनिषद्





## विषय सूची

॥अथ महावाक्योपनिषत् ॥.....	3
॥ महावाक्य उपनिषद ॥ .....	5
शान्तिपाठ .....	10



॥ श्री हरि ॥

## ॥ अथ महावाक्योपनिषत् ॥

॥ हरिः ॐ ॥

यन्महावाक्यसिद्धान्तमहाविद्याकलेवरम् ।  
विकलेवरकैवल्यं रामचन्द्रपदं भजे ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।  
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

गुरुके यहाँ अध्ययन करने वाले शिष्य अपने गुरु, सहपाठी तथा मानवमात्र का कल्याण-चिन्तन करते हुए देवताओं से प्रार्थना करते हैं कि:

हे देवगण ! हम भगवान का आराधन करते हुए कानों से कल्याणमय वचन सुनें। नेत्रों से कल्याण ही देखें। सुदृढः अंगों एवं शरीर से भगवान की स्तुति करते हुए हमलोग; जो आयु आराध्य देव परमात्मा के काम आ सके, उसका उपभोग करें।



॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

भगवान् शांति स्वरूप हैं अतः वह मेरे अधिभौतिक, अधिदैविक और अध्यात्मिक तीनों प्रकार के विघ्नों को सर्वथा शान्त करें ।

॥ हरिः ॐ ॥



॥ श्री हरि ॥

## ॥ महावाक्योपनिषत् ॥

॥ महावाक्य उपनिषद् ॥

अथ होवाच भगवान्ब्रह्मापरोक्षानुभवपरोपनिषदं  
व्याख्यास्यामः । गुह्याद्गुह्यपरमेषा न प्राकृतायोपदेष्टव्या ।  
सात्त्विकायान्तर्मुखाय परिशुश्रूषवे । ॥१-२॥

एक समय भगवान् ब्रह्मा जी ने (समस्त देवताओं के समक्ष) कहा कि (हे देवो!) अपरोक्षानुभव (इन्द्रियातीत अनुभूति) परक उपनिषद् की व्याख्या करते हैं। इस उपनिषद् को सामान्य मनुष्यों के समक्ष प्रकट नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह गूढ़ से गूढ़तर (गोपनीय) है; किन्तु सात्त्विक गुणों से ओत-प्रोत, अन्तर्मुखी तथा अपने गुरुजनों की सेवादि में संलग्न मनुष्यों को ही इस उपनिषद् का उपदेश करना चाहिए॥१-२॥

अथ संसृतिबन्धमोक्षयोर्विद्याविद्ये चक्षुषी उपसंहृत्य  
विज्ञायाविद्यालोकाण्डस्तमोदृक् । तमो हि  
शारीरप्रपञ्चमाब्रह्मस्थावरान्तमनन्ताखिलाजाण्डभूतम् ।  
निखिलनिगमोदितसकामकर्मव्यवहारो लोकः । ॥३-४॥

तदनन्तर संसार के बन्धन और मोक्ष की कारणभूता विद्या-अविद्या रूपी नेत्रों को बन्द करके (अहं ब्रह्मास्मि की अनुभूति करता हुआ) साधक (सम्यक् ज्ञानानुभूति के साथ ही) अविद्या रूप संसार के प्रति

तमोमयी दृष्टि-अज्ञानदृष्टि से मुक्त हो जाता है॥ यह आत्मतत्त्व को आच्छादित करने वाला अज्ञानान्धकार रूपी तम है, अविद्या है, यही चर और अचर जगत् को इस देह से लेकर ब्रह्मपर्यन्त अखण्ड मण्डल का कारण स्वरूप है। इस तम से ही इन सभी वस्तुओं की ब्रह्म से भिन्न एक अलग सत्ता का ज्ञान प्राप्त होता है। वेदों में जो धर्म-कर्तव्य का निर्देश है, उसका प्राकट्य करने वाला कारण स्वरूप भी वह तमरूपी अविद्या ही है॥३-४॥

नैषोऽन्धकारोऽयमात्मा । विद्या हि काण्डान्तरादित्यो  
ज्योतिर्मण्डलं ग्राह्यं नापरम् । असावादित्यो ब्रह्मेत्यजपयोपहितं  
हंसः सोऽहम् । प्राणापानाभ्यां प्रतिलोमानुलोमाभ्यां  
समुपलभ्यैवं सा चिरं लब्ध्वा त्रिवृदात्मनि  
ब्रह्मण्यभिधायमाने सच्चिदानन्दः परमात्माविर्भवति । ॥५-६॥

जब तक अपनी आत्मा के सन्दर्भ में ऐसा ज्ञान न हो जाए कि यह आत्मा अन्धकार रूप नहीं है, अपितु प्रकाश रूप ब्रह्म से प्रकट होने के कारण स्वयं प्रकाशस्वरूप है, तब तक पुरुष को सज्ञान रूपी विद्या का सतत अभ्यास करते रहना चाहिए। विद्या ही अज्ञानरूपी अविद्या से भिन्न, चिद् आदित्यस्वरूप, स्वप्रकाशित, ज्योतिरूप है। उसका मण्डल परम ज्योति से सम्पन्न है, वही ग्रहणीय है; क्योंकि वह ब्रह्ममात्र पर ही आश्रित है, स्वयं ब्रह्म का स्वरूप ही है, अन्य और कुछ भी नहीं है॥ यह (आत्मा) आदित्यरूप ब्रह्म श्वास-प्रश्वास रूप अजपाजप से युक्त हर एक देह में प्रतिष्ठित रहने वाला 'हंस' नाम से युक्त परमात्मा है। इसी हंसरूपी परमात्मा का अंश अपने आपको

मानकर और प्राणअपान, श्वास-प्रश्वास का ज्ञान प्राप्त करके चिरकाल तक साधना करने से इस विद्या द्वारा समष्टि, व्यष्टि एवं तदैक्य रूप आत्म-ब्रह्म में रत रहने पर ही सत्, चित् एवं आनन्द स्वरूप परब्रह्म का प्रादुर्भाव होता है ॥५-६॥

सहस्रभानुमच्छुरितापूरितत्वादलिष्या पारावारपूर इव ।  
 नैषा समाधिः । नैषा योगसिद्धिः । नैषा मनोलयः ।  
 ब्रह्मैक्यं तत् । आदित्यवर्णं तमसस्तु पारे ।  
 सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरः । नामानि कृत्वाऽभिवदन्यदास्ते ।  
 धाता पुरस्ताद्यमुदाजहार । शक्रः प्रविद्वान्प्रदिशश्चतस्रः ।  
 तमेव विद्वानमृत इह भवति । नान्यः पन्था अयनाय विद्यते ।  
 यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः । तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।  
 ते ह नाकं महिमानः सचन्ते । यत्र पूर्वं साध्याः सन्ति देवाः । ॥७-  
 १०॥

वह श्रेष्ठ तत्त्वज्ञान वृत्ति सहस्रों सूर्यों के प्रकाश से परिपूर्ण, निस्तरंग (तरंगरहित) समुद्र की जलराशि के सदृश, ब्रह्मभाव रस से युक्त एवं सदैव रहने वाली अर्थात् लय से रहित है। ऐसी स्थिति न तो समाधि की है और न ही योगसिद्धि की ही है; न ही मनोलय है; अपितु वह जीव-ब्रह्म की एकता ही है। वह ब्रह्म (आत्म तत्त्व) अज्ञान से परे आदित्य (शुक्ल) वर्ण है। धीर (विद्वान्) पुरुष नाम और रूप (की नश्वरता) पर विचार करके जिस परात्पर ब्रह्म की अनुभूति करते हैं, वे तद्रूप (ब्रह्मरूप) ही हो जाते हैं ॥ इस स्थिति (स्वरूप) को ब्रह्माजी ने सबसे पहले कहा और ऐसा ही सर्वातिशायी, देवों में अनुपम, अतिश्रेष्ठ देवराज इन्द्र ने भी कहा है। ऐसे अविनाशी उस ब्रह्म को इस



प्रकार से जानने वाला विद्वान् पुरुष परमात्मा के रूप को (अमृतत्व को) प्राप्त कर लेता है, इससे भिन्न अन्य कोई भी दूसरा मार्ग मुक्ति के लिए नहीं है ॥ पुरातन कालीन श्रेष्ठ धर्मावलम्बी इन्द्रादि देवों ने ज्ञान-यज्ञ द्वारा यज्ञरूप विराट् का यजन किया। वे ही यज्ञीय जीवनयापन करने वाले (याजक) प्राचीन काल से सिद्ध-साध्यगणों एवं देवों के निवास स्थल महिमामण्डित देवलोक को प्राप्त करते हुए प्रकाशित हो रहे हैं ॥७-१०॥

सोऽहमर्कः परं ज्योतिरर्कज्योतिरहं शिवः ।  
आत्मज्योतिरहं शुक्रः सर्वज्योतिरसावदोम् ॥११॥

मैं ही वह चिद् आदित्य हूँ, मैं ही आदित्यरूप वह परम ज्योति हूँ, मैं ही वह शिव (कल्याणकारी तत्त्व) हूँ। मैं ही वह श्रेष्ठ आत्म-ज्योति हूँ। सभी को प्रकाश प्रदान करने वाला शुक्र(ब्रह्म) मैं ही हूँ तथा उस (परमसत्ता) से कभी भी अलग नहीं रहता हूँ ॥११॥

य एतदथर्वशिरोऽधीते । प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति ।  
सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति । तत्सायं प्रातः प्रयुञ्जानः  
पापोऽपापो भवति । मध्यन्दिनमादित्याभिमुखोऽधीयानः  
पञ्चमहापातकोपपातकात्प्रमुच्यते । सर्ववेदपारायणपुण्यं लभते ।  
॥१२॥

इस उपनिषद् को प्रातःकाल पाठ करने से रात्रि में हुए पापों से मुक्ति मिल जाती है तथा सायंकालीन वेला में इसका पाठ करने वाला





(मनुष्य) दिन में हुए पापों से मुक्त हो जाता है। प्रातः-सायं (दोनों सन्ध्याओं) में पाठ करने से व्यक्ति को बड़े से बड़े पाप से भी मुक्ति मिल जाती है। मध्याह्न कालीन वेला में सूर्य के समक्ष इस उपनिषद् का पाठ करने वाला मनुष्य पाँच महापातक (ब्रह्महत्या, परस्त्रीगमन, सुरापान, द्यूतक्रीड़ा और मांसादि भक्षण) तथा अन्य और दूसरे जघन्य पापों से भी मुक्त हो जाता है। वह चारों वेदों के पारायण का पुण्य-फल प्राप्त करता हुआ भगवान् विष्णु के स्वरूप को प्राप्त हो जाता है ॥१२॥



## शान्तिपाठ

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।  
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

गुरुके यहाँ अध्ययन करने वाले शिष्य अपने गुरु, सहपाठी तथा मानवमात्र का कल्याण-चिन्तन करते हुए देवताओं से प्रार्थना करते हैं कि:

हे देवगण ! हम भगवान का आराधन करते हुए कानों से कल्याणमय वचन सुनें। नेत्रों से कल्याण ही देखें। सुदृढः अंगों एवं शरीर से भगवान की स्तुति करते हुए हमलोग; जो आयु आराध्य देव परमात्मा के काम आ सके, उसका उपभोग करें।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

भगवान् शांति स्वरूप हैं अतः वह मेरे अधिभौतिक, अधिदैविक और अध्यात्मिक तीनों प्रकार के विघ्नों को सर्वथा शान्त करें ।

॥ इति महावाक्योपनिषत् ॥

॥ महावाक्य उपनिषद समाप्त ॥



संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष  
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

[www.shdvef.com](http://www.shdvef.com)

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥